THE TIMES OF INDIA

Date: 28-09-16

Blood and water

New Delhi is looking for pressure points to make Pakistan pay a price

With foreign minister Sushma Swaraj's speech at the UN General Assembly, and Prime Minister Narendra Modi convening meetings on the Indus Water Treaty as well as MFN trade benefits Pakistan enjoys from India, the broad outlines of India's response to the Uri terrorist attack are becoming clear. India is looking at pressure points that can increase the cost to Pakistan for pursuing asymmetrical warfare against India. This can be a smart, 21st century way of getting Pakistan to drop terror as a foreign policy tool.One of these is calling out Pakistan for providing safe havens to global terrorists, and Swaraj's reference in her UN speech to how UN-designated terrorists roam free in Pakistan is a way of doing that. Second, Pakistan often invokes a human rights narrative against India and it is easy to highlight Pakistan's much worse human rights violations: Human Rights Watch, for example, has just put out a report saying Pakistan's police killed 2,000 people in fake encounters in 2015 alone.

If India revokes MFN Pakistan's exports to India will be affected, but these don't amount to much. A stronger signal has been sent by India's steps on the Indus Water Treaty, where Modi has said "blood and water can't flow together". The government has decided to suspend meetings of the Indus Water Commission, saying they can be resumed only in the absence of terrorism. Second, India grossly under-utilises its share of Indus river waters even under the terms of the treaty; this share can be stepped up without violating the treaty. Completing the Chenab's dams will take time but becomes in effect a slow-maturing pressure point. India can be receptive to Pakistan's complaints about the dams hurting its agriculture provided Pakistan is responsive, over time, to India's demand of dismantling its terror infrastructure.

This strategy can work if pursued in a holistic and consistent fashion. But that requires the NDA government to take some steps at home as well. First, it must strengthen homeland security and border defences. Second, it must improve the political atmosphere at home. There have been too many recent instances of bigotry vitiating the communal atmosphere, ranging from inflammatory statements by BJP leaders, to cow vigilantes acting with impunity, to BJP state governments passing and enforcing draconian laws regulating people's diets. These have contributed to unrest in Kashmir, leading Pakistan to manoeuvre for advantage. India needs to stop scoring these self-goals.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 28-09-16

Fix India's fragmented drug regulation

India's approval and regulatory system for drugs and pharmaceuticals is dysfunctional. A recent report by Dinesh Thakur, Ranbaxy whistle-blower and health activist, points out shortcomings and glaring anomalies in our oversight system for drugs and pharma, which need to be promptly rectified.

We have a hugely fragmented drug regulatory framework, with as many as 36 state and Union territory licensing authorities, whereby a pharma manufacturer can garner a licence in one state and distribute its product nationally. It follows that any laxity, say, a batch of Not of Standard Quality (NSQ) drug anywhere can have national and even international repercussions. The report cites studies which show that substandard and NSQ drugs can be as high as a fifth or more of all medicines procured locally. The Central Drugs Standards Control Organisation (CDSCO) and the state authorities are supposed to carry out routine testing of drug samples, but the report finds the statistical methodology followed to be "vague" and mostly nontransparent. This cannot continue.

We need to overhaul the oversight regime, given India's potential to be the pharmacy of the world. The Thakur report is categorical that there is no mechanism to ensure a nationwide withdrawal of a bad batch once it is established as being NSQ in a particular state. A more centralised regulatory system is possible by simply amending Rule 69 in the Drugs & Cosmetic Rules, 1945, the report avers. It also calls for a national NSQ database to vet credibility of manufacturers, and stresses the specific need for a public procurement law to regulate and mandate standards in the procurement of medicine. The bottom line is that proactive pharma regulatory reform would boost wellness, trade and the overall growth momentum.

दैनिक भास्कर

Date: 28-09-16

सिंधु जल संधि: पूरा इस्तेमाल ही सही सबक

उड़ी हमले की पृष्ठभूमि में भारतीय टिप्पणीकारों ने गुस्से में पाकिस्तान के खिलाफ पाक अधिकृत कश्मीर, यहां तक कि लाहौर के नज़दीक मुरीदके में आतंकी ठिकानों पर अचूक हमला करने से लेकर सिंधु नदी जल समझौता रद्द करने तक के नाटकीय कदम उठाने के सुझाव दिए हैं ताकि पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था को घुटनों के बल लाया जा सके। उनके गुस्से को समझा जा सकता है। किंतु हजम न हो सकने वाला सच यह है : भारत के पास कई विकल्प हैं, राजनयिक, आर्थिक और सैन्य, लेकिन इनमें से ज्यादातर व्यावहारिक विकल्प पहले आजमाए जा चुके हैं। खासतौर पर मुंबई में नवंबर 2008 में हुए बड़े हमले के बाद।

जिन्हें आजमाया नहीं गया है, जिनमें पाकिस्तानी ठिकानों पर हमला शामिल है, उनमें संघर्ष बढ़ने का जोखिम और ऐसे नतीजे निहित हैं, जिनका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। अब जवाबी कार्रवाई के लिए थोड़े ही वास्तविक और असरदार विकल्प बचे हैं। फिर भी कुछ न करना भी कोई विकल्प तो नहीं है।

यह हमारे बर्दाश्त के बाहर की बात है कि पाकिस्तान से कुछ आतंकी हर कुछ माह में दुस्साहस के साथ जब चाहे भारतीय ठिकानों पर हमला कर देते हैं। कुछ आतंकियों के बदले भारतीयों की जान ली जाती है सिर्फ उस विकृत आनंद के लिए कि भारत नपुंसक क्रोध में इधर-उधर हाथ मारता दिखाई दे पर कर कुछ न पाए। खासतौर पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की अति-राष्ट्रवादी सरकार के रहते, जिन्होंने अपने चुनाव प्रचार में पाकिस्तान को कड़ा जवाब देने की बात कही थी। अभी कोझिकोड में भाषण देते हुए प्रधानमंत्री ने पाकिस्तान को आतंक निर्यात करने वाले देश के बतौर दुनिया में अलग-थलग करने की धमकी दी। ठीक यही केंद्र सरकार ने मुंबई हमले के वक्त किया था। हालांकि उसका यह अलगाव (और राजनयिक दबाव) कुछ वर्षों के बाद खत्म हो गया, लेकिन इस बार उसे अलग-थलग करना केंद्र के लिए बड़ी चुनौती है। इसके कारण हैं। एक, उड़ी में शहीद लोगों की संख्या मुंबई से कम है। दो, मुंबई में आम लोग मारे गए थे, जबकि ये शहीद वर्दीधारी थे। तीन, पाक को अलग-थलग न करने के विभिन्न देशों के अपने द्विपक्षीय कारण हैं। अफगानिस्तान के कारण अमेरिका के हित हैं तो चीन के रणनीतिक हित उससे जुड़े हैं खासतौर पर 46 अरब डॉलर का आर्थिक गलियारा, जो उसका सबसे बड़ा विदेशी प्रोजेक्ट है।

'सर्जिकल स्ट्राइक' यानी आतंकी ठिकानों पर अचूक हमला आकर्षक लगता है, इसलिए नहीं कि एलिट कोहेन ने इसे फ्लर्टिंग की तरह बताया है- जिसमें आपको संतोष मिलता है और वचनबद्धता किसी बात की नहीं होती, लेकिन धारणा के विपरीत ऐसे हमले सीमित नहीं रह पाते। आप तो कुछ तंबू और छोटे लक्ष्यों को निशाना बनाते हैं, लेकिन यदि इस दौरान आपका विमान गिरा दिया गया तो आप क्या करेंगे? फिर पाकिस्तानी जवाबी कार्रवाई का क्या, जो निश्चित ही बहुत तेज और शायद अनुपात में ज्यादा हो? आप किस बिंदु पर अपनी सजा की कार्रवाई रोकेंगे, जो अपरिहार्य रूप से और बदले की कार्रवाई भड़काएगी? फिर नियंत्रण रेखा और इससे भी बुरी बात अंतरराष्ट्रीय सीमा पार करने पर दुनिया के तिरस्कार का सामना कैसे करेंगे? हमारी प्राथमिकता तो आर्थिक तरक्की है, जिसके लिए विदेशी निवेश व शांत वातावरण चाहिए। कुछ रणनीतिकारों ने पाक के साथ 1960 में हुई सिंधु जल संधि पर पुनर्विचार करने का सुझाव दिया है। संधि के तहत भारत के पास तीन पूर्वी नदियों ब्यास, रावी और सतलज का नियंत्रण है और पाकिस्तान के पास पश्चिम की चिनाब व झेलम का। विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता विकास स्वरूप ने इशारा दिया कि यह संकट में है। किंतु सिंधु व इसकी पांच सहायक नदियों के जल का बंटवारा द्विपक्षीय मामला नहीं है। विश्व बैंक ने इसमें मध्यस्थता की थी। संधि भंग करते ही विश्व बैंक इस मसले में आ जाएगा। पानी रोककर पूरे पाकिस्तानी पंजाब सहित उसके 65 फीसदी हिस्से में सूखे जैसे हालात पैदा कर पाक को घुटनों के बल लाने के विचार में तत्काल होने वाली तीखी अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया की अनदेखी की गई है।

फिर यह नल की टोंटी बंद करने जैसा काम भी नहीं है। यह देखना होगा कि भारतीय शहरों में बाढ़ न आ जाए। फिर हम एक मिसाल कायम कर देंगे और चीन को ब्रह्मपुत्र के साथ ऐसा करते देखेंगे, क्योंकि इस मामले में भारत प्रवाह के निचले हिस्से में हैं। अंतरराष्ट्रीय कानूनों के प्रति हमारे सम्मान, विदेश नीति में नैतिकता पर कायम रहने और भूकंप व बाढ़ के दौरान पाकिस्तान तक को मदद देने वाले हम आदर्श राष्ट्र के रूप में देखे जाते हैं। पानी रोककर लोगों को भूखे मारना हमारी प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। जैसा कि उमर अब्दुल्ला ने ध्यान दिलाया कि इसी वजह से चार युद्धों और इसे खत्म करने के जम्मू-कश्मीर विधानसभा में आमसहमति से पारित प्रस्ताव के बावजूद संधि बनी हुई है। मौजूदा संधि में भारत को सिंचाई, संग्रह और विद्युत उत्पादन के लिए पानी का ऐसा इस्तेमाल करने का हक है, जिससे जल-प्रवाह कम न हो। दुर्भाग्य से हमने इसका कभी लाभ नहीं उठाया, जबकि ब्रह्मपुत्र के ऊपरी हिस्से में तेजी से बांध बनाने के पीछे चीन ऐसे ही कदमों की दुहाई दे रहा है। यदि हम मौजूदा प्रावधानों का इस्तेमाल कर लें तो हम 36 लाख एकड़ फीट पानी संग्रह कर सकते हैं, जो विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता के अतिवादी बयानों की तुलना में पाकिस्तान के लिए

अधिक प्रभावी संकेत होगा। तो हम क्या करें? तोपखाने से पाक की अग्रिम चौकियों को खासतौर पर घुसपैठ कराने वाली, नियंत्रण रेखा के समीप की चौकियों को उड़ाना कम जोखिम का विकल्प है। बदले में गोलाबारी होगी, जिसे बिना अधिक प्रतिक्रिया दिए काबू किया जा सकता है। बॉलीवुड फिल्म 'फैंटम' में बताए मुताबिक जेहादी सरगनाओं को निशाना बनाना ताकि आतंकी भेजने वाले ऐसा करने के पहले दो बार सोचेंगे।

अंत में, पठानकोट हमले के बाद ही हमें प्रतिरक्षा संस्थानों की सुरक्षा में नाकाम रहने पर जवाबदेही तय करनी चाहिए थी। ले. जनरल फिलिप कैम्पोज की रिपोर्ट पर कोई कार्रवाई नहीं हुई है। यह आपराधिक लापरवाही है। इसके लिए बर्खास्तगियां होनी चाहिए। यदि रक्षा मंत्रालय ने अपना काम किया होता और उपलब्ध सारी टेक्नोलॉजी तैनात की गई होती तो उड़ी से नियंत्रण रेखा का उल्लंघन ही नहीं होता और जवान शहीद न होते। बमबारी और जल संधि तोड़ने जैसी कार्रवाइयों की मांग के बीच विवेक आधारित व जिम्मेदाराना कदम भी हैं, जिनकी हमें हमारी सरकार से इस समय सबसे ज्यादा दरकार है।

शशि थरूर (ये लेखक के अपने विचार हैं)

विदेश मामलों की संसदीय समिति के चेयरमैन और पूर्व केंद्रीय मंत्री

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 28-09-16

जल सुधार

सरकार निकट भविष्य में पानी की कमी से बचने के लिए जल प्रबंधन करने की खातिर जो नीतियां और सहायक कानूनी ढांचा तैयार कर रही है वह अपर्याप्त प्रतीत होता है। इस नीति से जुड़े मूल सिद्घांत जल संसाधन मंत्रालय द्वारा तैयार किए गए दो मसौदा विधेयकों-नैशनल वाटर फ्रेमवर्क बिल और रिवर बेसिन मैनेजमेंट बिल- से तो संबंधित हैं ही, साथ ही हाल ही में जल क्षेत्र सुधार पर आधारित विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट ने भी इसमें मदद की है। इस समिति की अध्यक्षता पूर्व योजना आयोग के सदस्य रहे मिहिर शाह ने की। इसमें संदेह नहीं कि ये दस्तावेज कई जरूरत आधारित उपायों का जिक्र करते हैं जिनकी मदद से पानी को बचाया जा सकता है, उसका संरक्षण किया जा सकता है। ये स्वागतयोग्य हैं लेकिन उनमें से बहुत कम ऐसे हैं जिनको एकदम नए विचार कहा जा सके। उनमें से कुछ उल्लेखनीय विचार इस प्रकार हैं: पानी को निजी संपत्ति के बजाय साझा संसाधन मानना, समूचे नदी बेसिन क्षेत्र को योजना का हिस्सा बनाना, पानी का उचित मूल्य निर्धारण, उद्योगों में जल खपत कम करना और गंदे पानी को उपचार के बाद दोबारा प्रयोग में लाना।

इन दस्तावेजों में शामिल सुझाव दो खास पहलुओं और अहम बिंदुओं पर खारिज हो जाते हैं: ये दस्तावेज कृषि में पानी के उचित इस्तेमाल पर पर्याप्त जोर नहीं देते हैं। यह वह क्षेत्र है जो न केवल खूब पानी की खपत करता है बल्कि बड़ी मात्रा में पानी को बरबाद भी करता है। इतना ही नहीं इसमें अधिशेष वर्षा जल के संरक्षण के लिए जल भंडारण क्षमता बढ़ाने पर भी कोई जोर नहीं दिया गया। कुछ अन्य संस्थागत सुधारों के सुझाव को लेकर भी तीखी प्रतिक्रिया आई है। सबसे विवादास्पद सुझाव है केंद्रीय जल आयोग (सीडब्ल्यूसी) और केंद्रीय भूजल बोर्ड (सीजीडब्ल्यूबी) को खत्म करना और

उनकी जगह एक संस्था का गठन करना जो एक साथ सतह के जल और भूजल का प्रबंधन कर सके। ज्यादातर आलोचना सही है क्योंकि इस बात की आश्वस्ति नहीं है कि नई संस्था में पुरानी संस्थाओं की कमियां शामिल नहीं होंगी।

जब बात जल संसाधन की आती है तो ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत जल संकट वाला देश नहीं है। हालात इतने खराब इसलिए हुए हैं क्योंकि उपलब्ध जलापूर्ति का प्रबंधन ठीक से नहीं हुआ बल्कि उसका दुरुपयोग किया गया। औसत वार्षिक वर्षा 120 सेंटीमीटर है। इसमें 89 सेंटीमीटर बारिश मॉनसून के चार महीनो के दौरान होती है। यह आंकड़ा 98 सेंटीमीटर के वैश्विक औसत से बेहतर है। लेकिन हमारे देश में बारिश का बड़ा हिस्सा बेकार बह कर सागर में जा मिलता है। इसके साथ ही मिट्टी की कामयाब ऊपरी परत भी बह जाती है। देश के करीब 90 बड़े जलाशयों तथा अनगिनत छोटे जलाशयों की कुल जल भंडारण क्षमता की बात की जाए तो वह एक साल की जरूरत के लिहाज से भी अपर्याप्त हैं। बुरी बात यह है कि मौजूदा जलाशयों का भी हम पूरा लाभ नहीं ले पा रहे हैं क्योंकि सिंचाई क्षमता निर्माण और उसके वास्तविक उपयोग में खासा अंतर है। इसके विपरीत कई अन्य देशों के पास दो साल से अधिक की जरूरत का पानी बचाकर रखने की क्षमता है।

मिहिर शाह समिति ने भंडारण क्षमता बढ़ाने की बात गोलमोल कर दी है। एक अन्य हल जिसकी अनदेखी की गई है वह है अधिशेष वर्षा जल को भूजल के रूप में संरक्षित करना। इसके लिए नदियों के आसपास के इलाके में हरियाली बढ़ाई जा सकती है और विशेष जल संरक्षण ढांचे निर्मित किए जा सकते हैं। इसके अलावा कृषि क्षेत्र में पानी के प्रयोग को उचित स्तर पर लाना भी आवश्यक है। बेहतर कृषि व्यवहार से कम पानी से भी अच्छी फसल पैदा की जा सकती है। ऐसा करके खेती में पानी की खपत कम की जा सकती है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो जल क्षेत्र सुधार निरर्थक रहेंगे।

Date: 28-09-16

कृषि क्षेत्र में अनुसंधान और शिक्षण में पिछड़ता भारत

भारत में कृषि अनुसंधान और शिक्षण व्यवस्था किस वजह से बीमार हालत में है? यह सवाल इस वजह से ज्यादा प्रासंगिक है कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के रूप में दुनिया की सबसे बड़ी कृषि शोध और शिक्षण संस्था की मौजूदगी को लेकर हम खासा गर्व महसूस करते रहे हैं। इस संस्थान में देश के कुछ सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे और काबिल वैज्ञानिक काम करते हैं। इसके बावजूद यह संस्थान अपनी क्षमता के मुताबिक नतीजे नहीं दे पाया है। कई बड़ी खोजें राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठनों की तरफ से स्थापित अपेक्षाकृत छोटे और नए शोध संस्थानों ने की हैं। इसके लिए काफी हद तक मौजूदा व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। अपर्याप्त फंडिंग, स्टाफ की कमी, महिला-पुरुष अंतर का मसला, अतार्किक शैक्षणिक पाठ्यक्रम और संस्थान में शिक्षा हासिल करने वालों को वहीं पर शिक्षण कार्य में लगाने जैसे कारणों से आईसीएआर के प्रदर्शन में गिरावट आई है।

अंतरराष्ट्रीय खाद्य नीति अनुसंधान संस्थान की तरफ से चलाए जा रहे कृषि विज्ञान और तकनीकी संकेतक कार्यक्रम (एएसटीआई) के नवीनतम आंकड़ों से भी इन अवरोधों की पुष्टि होती है। इससे पता चलता है कि कृषि अनुसंधान और शिक्षण पर भारत में होने वाला खर्च वास्तविक जरूरत से काफी कम है। कृषि क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद का एक फीसदी खर्च कृषि अनुसंधान और शिक्षण पर करने का लक्ष्य रखा गया था लेकिन वास्तविक खर्च इसका एक तिहाई ही रहा है। कृषि-जीडीपी का केवल 0.3 फीसदी ही कृषि शोध और शिक्षण पर खर्च हुआ है। अगर चीन से तुलना करें तो वह अपने

कृषि-जीडीपी का 0.6 फीसदी इस पर निवेश करता है। बदतर हालत यह है कि इस मद में होने वाला आवंटन भी वर्ष 2000 के 0.34 फीसदी से घटकर 2009 में 0.32 फीसदी और 2014 में तो केवल 0.3 फीसदी रह गया। परेशान करने वाली बात यह है कि जो पैसा कृषि शिक्षण और अनुसंधान के मद में आता भी है उसका बड़ा हिस्सा (करीब 73 फीसदी) वेतन पर ही खर्च हो जाता है और शोध एवं शिक्षण गतिविधियों के लिए बहुत कम पैसा बचता है।

इससे भी ज्यादा चिंता में डालने वाली बात यह है कि कृषि वैज्ञानिकों की संख्या लगातार घटती जा रही है। भारत में कृषि वैज्ञानिकों की संख्या पहले से कम रही है, ऐसे में और भी गिरावट आने से कृषि शोध पर विपरीत असर पडऩे की आशंका सताने लगी है। साल 2000 में देश में कृषि शोध में लगे वैज्ञानिकों की संख्या 13,106 थी लेकिन 2014 में यह संख्या करीब आठ फीसदी गिरकर 12,746 पर आ गई। हद तो यह है कि इस हालत में भी आईसीएआर के स्वीकृत पदों में से 22 फीसदी से भी अधिक पद खाली पड़े हुए हैं। इसके अलावा राज्यों के कृषि शिक्षण एवं शोध संस्थानों में भी 38 फीसदी पद रिक्त चल रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रति एक लाख किसानों पर कृषि वैज्ञानिकों की संख्या वर्ष 2014 में 4.62 पर आ गई जबकि वर्ष 2000 में यह 5.52 रही थी। झारखंड और बिहार जैसे कृषि-प्रधान राज्यों में तो हालत और भी खराब है जबकि ये राज्य गरीबी उन्मूलन और निवासियों के जीवनस्तर में सुधार के लिए आम तौर पर कृषि पर ही आश्रित हैं। बिहार में प्रति एक लाख किसान पर 1.7 कृषि वैज्ञानिक हैं जबकि झारखंड में यह आंकड़ा केवल 1.6 है। वहीं खेती के जरिये संपन्नता का नया तरीका ईजाद करने वाले हरियाणा और पंजाब में हालात इसके ठीक उलट हैं। हरियाणा में यह अनुपात 18.4 है जबकि पंजाब में 15.5 है। ध्यान देने वाली बात यह है कि कुछ पर्वतीय राज्य भी इस मामले में ऊंची पायदान पर मौजूद हैं। जैसे कि उत्तराखंड और जम्मू कश्मीर में प्रति एक लाख किसानों पर क्रमश: 24.7 और 19.7 कृषि वैज्ञानिक मौजूद हैं।

एएसटीआई के आंकड़े वैज्ञानिक समुदाय में व्याप्त महिला-पुरुष संख्या में विसंगति को भी उजागर कर रहे हैं। देश भर के कृषि संस्थानों में तैनात वैज्ञानिकों में महिलाओं की संख्या केवल 18 फीसदी है और शोध प्रबंधन वाले पदों पर मौजूद महिला वैज्ञानिकों की संख्या तो बहुत कम है। देश के एक तिहाई खेतिहर किसानों के महिला होने और कृषि शिक्षण के परास्नातक पाठ्यक्रमों में आधी महिलाएं होने के बावजूद महिला कृषि वैज्ञानिकों की संख्या का इतना कम होना अस्वीकार्य है। एएसटीआई का कहना है कि कृषि शोध में लगे वैज्ञानिकों के बीच लैंगिक संतुलन सुधारने से देश के सभी किसानों की प्राथमिकताओं और चुनौतियों को बेहतर तरीके से निष्पादित करने में मदद मिलेगी। देश के कृषि शिक्षण संस्थानों में एक बहुत ही गंभीर समस्या आंतरिक अकादमिक समावेशन है। अधिकांश कृषि विश्वविद्यालयों के करीब 80 फीसदी शैक्षणिक पद पर वही लोग बैठे हुए हैं जिन्होंने उसी विश्वविद्यालय से स्नातक और परास्नातक की पढ़ाई की थी। इस प्रवृत्ति के बने रहने से बाहरी संस्थानों से पढ़कर आए युवाओं को मौके नहीं मिल पाते हैं और विश्वविद्यालय भी नए विचारों से वंचित रह जाते हैं।

इसके साथ ही कृषि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम भी मोटे तौर पर आज की जरूरतों से भटके हुए हैं। भले ही इन विश्वविद्यालयों से पढ़कर निकलने वाले युवाओं के लिए रोजगार के मौके निजी क्षेत्र में बनते हैं लेकिन अधिकांश विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम सरकारी क्षेत्र की जरूरत के मुताबिक ही बनाए गए हैं। भारत में कृषि अनुसंधान और शिक्षण को सही रास्ते पर लाने के लिए इन मुद्दों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है ताकि खेती के आधुनिक तौर-तरीकों से तारतम्य बिठाने वाले अनुसंधान को प्रोत्साहित किया जा सके।

सुरिंदर सूद

दैनिक जागरण

Date: 28-09-16

पानी के बंटवारे का सवाल

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1997 में देशों के बीच पानी के बंटवारे का प्रस्ताव पारित किया था। इस प्रस्ताव में व्यवस्था थी कि बंटवारे को दो सिद्धांतों के अनुरूप किया जाएगा। पहला सिद्धांत 'न्यायसंगत और उचित' बताया गया। मान लीजिए आज कर्नाटक के किसान दस सिंचाई कर रहे हैं और तमिलनाडु के किसान एक सिंचाई को तरस रहे हैं। ऐसे बंटवारे को न्यायसंगत और उचित नहीं कहा जा सकता है। परंतु मान लीजिए कर्नाटक की नहरों से पांच प्रतिशत पानी का रिसाव होता है, जबकि तमिलनाडु की नहरों से 25 प्रतिशत का। अथवा कर्नाटक के किसान जीवनदायिनी धान की खेती कर रहे हैं

जबकि तमिलनाडु के किसान विलासिता के अंगूर की खेती कर रहे हैं। अथवा कर्नाटक में उतने ही पानी से सौ छोटे किसानों के द्वारा सिंचाई की जाती है, जबकि तमिलनाडु में पांच बड़े किसानों द्वारा। ऐसे में कर्नाटक को अधिक पानी देना 'न्यायसंगत और उचित' होगा। तात्पर्य यह है कि इस सिद्धांत की व्याख्या करना कठिन है। संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव में दूसरा सिद्धांत किसी देश द्वारा दूसरे देश को 'विशेष हानि ' न पहुंचाने का बताया गया है। जैसे कर्नाटक द्वारा पानी पूरी तरह रोक दिया जाए तो तमिलनाडु की फसलें सूख जाएंगी और पीने के पानी का अकाल पड़ जाएगा। तमिलनाडु को ऐसी हानि नहीं होनी चाहिए। परंतु मान लीजिए कर्नाटक द्वारा कम पानी छोडऩे से तमिलनाडु के किसानों को पांच के स्थान पर चार सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी मिलता है। क्या इसे विशेष हानि कहा जा सकता है? अत: इस सिद्धांत की भी व्याख्या करना कठिन है। सच यह है कि पानी के बंटवारे को कोई ठोस सिद्धांत उपलब्ध नहीं है।

कानून के आधार पर पानी का वितरण उतना ही कठिन है। यूरोपीय सोसायटी आफ इंटरनेशनल लॉ द्वारा बनाए गए पर्चे में कहा गया है कि अंतरराष्ट्रीय कानून में परंपरागत उपयोग को ही आधार माना गया है। यहां भी पेंच है। जैसे फरक्का बैराज लें। 1975 में बैराज बनने के पहले गंगा का अधिकतर पानी बांग्लादेश को जा रहा था। हमारी हुगली नदी अकसर सूख जाती थी। परंपरा के आधार पर भारत द्वारा फरक्का बैराज बनाना गलत हो जाएगा। एक और समस्या बदलती परिस्थितियों की है। जैसे पचास वर्ष पूर्व बेंगलुरू छोटा शहर था। आज इस शहर का विस्तार हो गया है। देश द्वारा निर्यात किए जा रहे साफ्टवेयर में बेंगलुरू का महत्वपूर्ण योगदान है। परंपरा का सख्ती से पालन करेंगे तो बेंगलुरू का विकास नहीं हो सकेगा। अत: पानी के वितरण का यह सिद्धांत भी असफल है। निष्कर्ष है कि दो क्षेत्रों के बीच पानी का बंटवारा किसी नैतिक अथवा कानूनी आधार पर संभव नहीं है। अंतत: पानी का बंटवारा ताकत के आधार पर हो जाता है। जैसे इजरायल द्वारा जार्डन नदी के 80 प्रतिशत पानी का उपयोग हो रहा है, क्योंकि वह ताकतवर है।

पानी का अंतरराज्यीय बंटवारा ताकत के आधार पर नहीं किया जा सकता है। कर्नाटक तथा तमिलनाडु एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध नहीं छेड़ सकते हैं। अत: अंतरराज्यीय जल विवादों में केंद्र सरकार को अपनी ताकत का उपयोग करके निर्णय देना होगा। विषय केवल कर्नाटक का नहीं है। ऐसा ही विवाद पंजाब तथा हरियाणा के बीच सतलुज नदी को लेकर विद्यमान है। बिहार की शिकायत है कि उसे गंगा के पानी का न्यायसंगत और उचित हिस्सा नहीं मिल रहा है। केंद्र सरकार को चाहिए कि अपने निष्पक्ष विवेक का उपयोग करते हुए पानी का बंटवारा करे। केंद्र सरकार की समस्या है कि

बंटवारा करने का कोई ठोस सिद्धांत उपलब्ध नहीं है। अत: दोनों पक्ष नाराज ही रहेंगे, वह निर्णय चाहे कुछ भी दे। ऐसे में केंद्र सरकार निर्णय करने से बचना चाहती है। परंतु यह आंख मिचौली देश के लिए हानिकारक है। देश के दो राज्यों के लोगों के बीच अनायास ही मनमुटाव पैदा हो जाता है। जैसे कर्नाटक में रह रहे तमिल लोगों को आक्रोश का सामना करना पड़ रहा है। अत: केंद्र सरकार को पानी के बंटवारे के लिए पारदर्शी व्यवस्था बनानी चाहिए।

इस व्यवस्था के तीन बिंदु बनाए जा सकते हैं। पहला बिंदु पीने के पानी का है। हमारी राष्ट्रीय जल नीति में इसे सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। अत: उपलब्ध पानी को सर्वप्रथम पीने के लिए आवश्यकतानुसार आवंटित करना चाहिए। शेष पानी के आधे हिस्से को परंपरा के अनुसार आवंटित किया जा सकता है। पिछले दस वर्षों के बंटवारे को 'परंपरा ' माना जा सकता है। शेष आधे हिस्से की नीलामी करनी चाहिए। जिस राज्य को पानी की अधिक आवश्यकता हो वह इसे खरीद ले। मान लीजिए कर्नाटक में एक लीटर पानी से 30 पैसे का रेशम उत्पादित होता है। तमिलनाडु में उसी एक लीटर पानी से 70 पैसे की चीनी उत्पादित होती है। ऐसे में तमिलनाडु पानी का अधिक मूल्य चुकाने को तैयार होगा। आने वाले समय में परंपरा के आधार पर पानी का वितरण बदलता जाएगा। यदि तमिलनाडु ने कावेरी का 80 प्रतिशत जल खरीदा तो आने वाले समय में परंपरा के अनुसार आवंटित होने वाले आधे पानी को इस अनुपात में आवंटित किया जाएगा। देश के लिए यह लाभ का सौदा है। पानी का उपयोग वहां होगा जहां उससे अधिकतम उत्पादन हासिल होता है। नीलामी में वसूल की गई रकम का उपयोग संबंधित राज्यों के जल संसाधनों के विकास के लिए किया जा सकता है। नीलामी में दूसरे राज्यों को भी बोली लगाने का अवसर दिया जा सकता है। आंध्र प्रदेश पानी का अधिक मूल्य चुकाने को तैयार हो तो वह कावेरी नदी के पानी को खरीदकर विजयवाड़ा ले जा सकता है। पानी हमारा बहुमूल्य संसाधन है। इसका उपयोग वहीं होना चाहिए जहां इससे देश को अधिकतम उत्पादन मिले। यह व्यवस्था पारदर्शी है। किसी राज्य को शिकायत नहीं हो सकती है कि उसके अधिकारों का हनन किया गया है।

इस संदर्भ में पाकिस्तान के साथ पानी के बंटवारे पर भी पुनर्विचार किया जा सकता है। पचास के दशक में हमने सिंधु जल संधि की थी। इजरायल के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि पानी का अंतरदेशीय बंटवारा शक्ति के आधार पर होता है। हम सिंधु जल संधि में संशोधन की मांग कर सकते हैं। कहा जा सकता है कि परिस्थितियां बदल गई हैं और पानी के वितरण पर पुनर्विचार करना चाहिए, लेकिन खतरा है कि चीन तथा नेपाल के साथ यह दांव उल्टा पड़ सकता है। एक तरफ हम पाकिस्तान तथा बांग्लादेश को जाने वाली नदियों के शीर्ष पर स्थित हैं तो दूसरी तरफ नेपाल, भूटान तथा चीन से आने वाली नदियों के पैर पर। अत: पाकिस्तान को सिंधु घाटी की नदियों का पानी न देने से चीन के लिए उसी सिद्धांत को उद्घृत करते हुए हमें ब्रह्मपुत्र के पानी से वंचित करने का तर्क मिल जाएगा। लेकिन अंत में बंटवारा शक्ति के आधार पर ही होता है। इस दृष्टि से विषय पर निर्णय लेना चाहिए।

लेखक डॉ. भरत झुनझुनवाला, आर्थिक मामलों के विशेषज्ञ हैं और आइआइएम बेंगलुरू में प्रोफेसर रह चुके हैं

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 27-09-16

Yea-sayer

India does well to stop dithering on Paris accord. This could begin a new phase in its climate change diplomacy.

Prime Minister Narendra Modi's announcement that India will ratify the Paris climate accord on October 2 has ended an uncertain period in the country's climate change diplomacy. Three weeks ago, at the G-20 summit in Beijing, India had refused to commit a firm date for ratifying the deal. China and the US had ratified the Paris accord in the run-up to the summit. Last week, 30 more countries, including Brazil, Argentina and Mexico, gave their assent to the accord and there are media reports that the EU, as a bloc, will join the treaty by September-end. Fifty-five countries, responsible for at least 55 per cent of the global emissions of greenhouse gases (GHGs), must ratify the Paris accord for it to take effect. Last week's approvals mean that 60 countries responsible for 48 per cent of global GHG emissions have ratified the accord. With its dithering, India, which contributes 4.5 per cent of global GHG emissions, risked being the villain of the Paris climate story.

In fact, India's recent reputation at international climate negotiations is none too good. In the last decade, its argument that the historical culpability of industrialised countries for the current levels of GHGs in the atmosphere enjoins on them the greater responsibility for mitigating climate change has been challenged, not just by industrialised countries but also by countries highly vulnerable to climate change — Bangladesh and Maldives for example. As an emerging economic power, the country has been asked to take on more responsibilities to check climate change. India's insistence on eradicating energy poverty has often been seen as an alibi for the profligacy of the country's rich. Last year, in the run-up to the Paris climate summit, India showed its willingness to shed its traditional fossil-fuel centred approach to energy. It announced a slew of measures that included a greater share for renewable sources in the country's energy mix. At the Paris climate meet in 2015, India sought $2.5 trillion in aid by 2030 to fulfill its climate-related commitments. The response from the industrialised nations was lukewarm and Prakash Javadekar, the then environment minister, is on record saying that India signed the Paris agreement in a "spirit of compromise".Prime Minister Modi, though, tweeted that the Paris climate meet was a victory for climate justice. India's attitude in the months after the summit, however, showed its lack of enthusiasm. Such prevarication would have done the country's cause no good. India stood the chance of being upstaged by countries like China and Brazil on issues of finance and technology transfer. In recent times, India has tried to signal its commitment to renewable energy by taking on leadership of groups like the International Solar Alliance. India risked its credibility in such bodies with its indifferent attitude to the Paris accord. The PM's announcement is a step in the right direction.

Date: 27-09-16

Get real on Russia

As it draws closer to Pakistan and China, India must stop taking it for granted.

"Every school child in India knows Russia is India's best friend." That was the essence of Prime Minister Narendra Modi's remarks when he first met the Russian President Vladimir Putin at the margins of the BRICS summit two years ago in Brazil. Although Modi was on his very first diplomatic assignment outside the Subcontinent, he had got the popular Indian sense of Russia just right.As Russia conducts its first ever military exercise with the Pakistan Army this week, Delhi has to reckon with the prospect that Russia might not necessarily remain India's "best friend forever". Rethinking Russia's position in India's strategic calculus will be heart-wrenching for many in Delhi. Moscow's new warmth towards Pakistan may have, wittingly or unwittingly, begun to nudge India towards a relationship with Russia that is founded in realism rather than inertia.

Until now India's Russian relationship seemed immune to change — internal and external. Governments — centrist, leftist and rightist — have come and gone in Delhi. The Soviet Union, which had such strong influence on the formation of modern India's worldview during the inter-war period, simply disappeared from the map in 1991. But Delhi and Moscow seemed to carry on after the end of the Cod War. But by letting the sensitive Jammu and Kashmir question into its current play with Pakistan, Moscow might have dealt a big blow to the popular enthusiasm in India for the Russian relationship. At the heart of the Indian perception of Russia as the most reliable international partner was Moscow's attitude towards the dispute between India and Pakistan over Jammu and Kashmir. The Soviet tilt towards India on the issue in the 1950s amidst the Anglo-American maneuvers in favour of Pakistan helped put a halo around Russian heads in India. During their 1955 visit to India that laid the foundations for an extended partnership between the two countries, the Soviet leaders Khrushchev and Bulganin, travelled to Srinagar. In a public reception there, Khrushchev proclaimed that Moscow was just across the border and if there is any trouble in Kashmir, Delhi should just give a shout. Moscow kept its word and exercised its veto in the UN Security Council to block Anglo-American moves on Kashmir in the 1950s.

Anyone familiar in Moscow with the special role of Kashmir in the evolution of India-Russia relations would have balked at the Pakistani proposal to conduct military exercises in Gilgit-Baltistan, that is part of the Kashmir claimed by India. It is entirely possible that the Russians did not see through the Pakistani ruse to lure them into Kashmir. Others suggest the decision may have simply been a bureaucratic mix-up. The Russian embassy in Delhi stepped in to clarify that the exercises will not take place in Gilgit-Baltistan. But the damage had been done. The timing of the exercise was bad enough. It comes at a moment when India was trying to isolate Pakistan after the Uri attacks, coping with fresh political violence inside Kashmir, and drawing international attention to India's claims over Gilgit-Baltistan. That Russia was unwilling to postpone these exercises in deference to Indian sensitivities at this critical juncture suggests something fundamental is at work in Moscow's approach to the Subcontinent.That Russia has sought a normal relationship with Pakistan since the end of Cold War has not been a secret. So is the fact that Indian diplomacy often prevailed over its old friends in Moscow to limit Russian ties with Pakistan. Moscow's reluctance to defer to Indian sensitivities this time suggests that a new phase in India-Russia relations is finally with us. Only the sentimentalists in Delhi will be surprised at Russia's decision to redo its South Asian sums.

That a sovereign has no permanent friends is part of traditional wisdom around the world. Nothing illustrates this more than the evolution of Russia's ties with China and Pakistan. Few countries in the non-Western world have done more damage to Russian interests. The Chinese alignment with the West from the 1970s and the Pakistani jihad against Moscow in the 1980s were central to the defeat of the Soviet Union in the Cold War. That was then; Moscow now believes it can play the China card in enhancing its leverage with the US. Some in Moscow may also bet that cosying up to Pakistan would help caution India against drawing too close to America. Others in Russia might point to the unintended consequence of pushing India into the arms of the US.

But India has no reason to be drawn into that argument within Moscow. Russia has the sovereign right to choose its friends. Nor should Delhi assume that Russia's current orientation — warmth to China and hostility to the West — is a permanent one. At a moment of great turbulence in great power relations, Russia is rightly jockeying for position. This demands that Delhi must stop taking Moscow for granted. It must focus instead on reconstituting the partnership with a country that will remain a powerful force in Eurasia, on its own merits.

Raja Mandala

The writer is director, Carnegie India, Delhi and consulting editor on foreign affairs for 'The Indian Express'

THE HINDU

Date: 27-09-16

Joining the climate high table

The Centre's decision to ratify the Paris Agreement on climate change on October 2 is a welcome affirmation of India's commitment to join the global community in reducing greenhouse gas (GHG) emissions. As an emerging nation with a large number of people living without access to electricity, India's predicament of having to generate more energy for poverty eradication while simultaneously curbing GHGs is universally acknowledged. But there is no denying that the country has adopted an approach that is predicated on a much-too-high use of fossil fuel-based technologies. This needs to be addressed as all nations look towards the next phase, when the climate agreement comes into force. There is near certainty that the decision made in Paris will become operational before the deadline for signatures set for April 2017: 61 country-parties responsible for 47.79 per cent of emissions have ratified it so far. What remains is for individual countries in Europe, and the European Union, to review their commitments after Brexit, and sign up to reach the target of 55 per cent of total GHG emissions. India's decision to join, overcoming a reticence that was apparently linked to the failure to enter the Nuclear Suppliers Group, is commendable. It would, in any case, have come under pressure to do so since the Paris process is sure to move ahead with Europe's entry.

With climate commitments becoming almost inevitable, a national consultative process on low carbon strategies cannot be delayed. In order to comply with the Paris process, every aspect of energy use would need precise measurement in the years ahead, which several sectors of the economy are ill-equipped to do at present. Upgrading the electricity grid to take in higher volumes of renewable power is an urgent necessity if India is to realise the national goal submitted to the UN Framework Convention on Climate Change to install 100 gigawatts of solar power capacity by 2022. A bold new policy on urban design to curb emissions from buildings and transport has to be written into all relevant legislation. Such far-reaching steps can be taken only with the active participation of State governments, many of which remain on the periphery of the discussion.

That needs to change, and a blueprint for action has to be drawn up, if a convincing case is to be made for assistance from the $100 billion a year that the rich countries are to put together by 2020. Fundamentally, national policy should mandate even higher levels of taxes on fossil fuels and transfer the benefits to eco-friendly options, be it solar panels, efficient light bulbs, bicycles, green buses/trains, and greening initiatives.

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 27-09-16

इतनी योजनाएं फिर भी कुपोषण

आज भारत बड़े विरोधाभास से गुजर रहा है। एक तरफ तो हम इतने अन्न का उत्पादन करते हैं, जिससे समस्त देशवासियों का पेट भरा जा सके, दूसरी तरफ देश के विभिन्न हिस्सों में आज भी लाखों बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। भारत 2022 में सबसे अधिक आबादी वाला देश बनने वाला है। इसके मद्देनजर आज अपने मानव संसाधन की इस पूंजी में निवेश करना समय की बड़ी जरूरत है।

किसी भी मनुष्य को दिए जाने वाले पोषण का प्रभाव सीधे उसके कार्य सीखने और करने की क्षमता पर पड़ता है। जाहिर सी बात है कि सामूहिक रूप से 'जन-जन' की उन्नति से होने वाला योगदान पूरे देश की आर्थिक व्यवस्था को बदलने का माद्दा रखता है।

आज समस्या यह नहीं है कि हमारे पास कुपोषण से लड़ने वाली योजनाओं की कमी है। आईसीडीएस, पीडीएस, मध्याह्न भोजन योजना आदि ढेरों योजनाएं सरकार की तरफ से बनाई गई हैं, लेकिन कुपोषण एक ऐसी समस्या है, जिस पर अन्य समस्याओं, जैसे लोगों की आर्थिक स्थिति, शिक्षा, स्वच्छता, महिलाओं की सामाजिक स्थिति, स्वास्थ्य आदि सभी मामलों के साथ नए सिरे से एक ताने-बाने को बुन कर उनका समाधान निकालते हुए ही जीता जा सकता है। हमारे आंगनबाड़ी केंद्रों की जमीनी हकीकत कुछ और ही कहानी कहती है। हकीकत यही है कि सौ बच्चों की उपस्थिति दिखाने वाले कई केंद्रों में 20 बच्चे भी नहीं होते। सरकार पोषण पर हर साल तकरीबन आठ हजार करोड़ रुपये खर्च करती है, लेकिन इस सबके बावजूद लगभग 25 लाख बच्चे आज भी हर साल कुपोषण से अपनी जान गंवा रहे हैं।

मध्य प्रदेश का ही उदाहरण ले लीजिए। यहां श्योपुर जिले में पिछले दो महीनों में 19 बच्चों की कुपोषण से मृत्यु हो चुकी है, लेकिन राज्य सरकार राहत प्रदान करने की बजाय मृत्यु के असली कारण पर पर्दा डालने में लगी हुई है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन द्वारा भेजी गई दस टीमों ने यहां पांच दिनों में ही 461 कुपोषित बच्चे ढूंढ़ निकाले। प्रदेश में शिशु मृत्यु दर 51 पर है, जबकि देश के पैमाने पर यह दर 39 है। राज्य प्रशासन ने दो वर्षों में 2,503 करोड़ कुपोषण पर खर्च किए, लेकिन महिला और बाल विकास विभाग के आंकड़े बताते हैं कि प्रदेश में अब भी 13 लाख बच्चे कुपोषित हैं। प्रदेश की स्वास्थ्य प्रणाली में चाहे डॉक्टरों की भारी कमी हो या स्वास्थ्य सेवाओं-सुविधाओं की बदतर स्थिति, लोगों की परेशानियों का कोई अंत नहीं है। राज्य की आबादी के अनुपात में यहां जरूरत है सात हजार डॉक्टरों की, लेकिन उपलब्ध सिर्फ

3,000 हैं। इसी तरह, 1989 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों की जगह सिर्फ 1,171 केंद्र काम कर रहे हैं।आर्थिक सर्वेक्षण 2015-16 कहता है कि मातृत्व और शैशवावस्था के मामले में स्वास्थ्य और पोषण कार्यक्रमों पर होने वाला निवेश दीर्घकालिक लाभ का मामला है, लेकिन हम इस मानव पूंजी का लाभ उठाने की बजाय उसे जाया किये जा रहे हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार, कुपोषण के कारण भारत की जीडीपी को कम से कम दो-तीन प्रतिशत तक हानि पहुंच रही है, लेकिन क्या ये आंकड़े देश को असल में पहुंच रहे नुकसान का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त हैं? कुपोषण के विरुद्ध यह लड़ाई अब एक राजनीतिक मामला नहीं रह गई है, यह मानवीयता का, मानवीय संवदेना का मामला बन चुकी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज जो बच्चे कुपोषण की बलि चढ़ रहे हैं, वही आगे चलकर देश के कामगार बनते, भविष्य बनते। इनके उत्थान, इनकी रक्षा और इनके विकास में ही देश का विकास निहित है।

कुपोषण को जड़ से खत्म करने के लिए हमें ठोस कदम उठाने होंगे। पहला- देश में आईसीडीएस (पोषण), पीडीएस (आहार), मनरेगा (रोजगार) आदि कई योजनाएं अलग-अलग स्तरों पर कार्य कर रही हैं, जबकि सबसे पहले हमें एक 'कुपोषण उन्मूलन मिशन' की जरूरत है, जिसके तहत अन्य विभाग चाहे महिला व बाल विकास हो, ग्रामीण विकास या स्वास्थ्य विभाग- सभी के कार्यों और योजनाओं को सम्मिलित कर एक दायरे में लाया जा सके। हर जिम्मेदार विभाग की अपने विशिष्ट लक्ष्यों के लिए जवाबदेही केंद्र में स्थापित एक स्वतंत्र प्राधिकरण को होनी चाहिए। दूसरा-आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल से नीति-निर्माताओं के पास सही जानकारी व डाटा पहुंचाने की जरूरत है। तकनीक का एक और बेहतरीन उपयोग नियंत्रण और ऑडिट के लिए भी किया जाना चाहिए।

जैसे कि आंगनबाड़ी केंद्रों को दी जाने वाली सामग्री के डाटा के साथ-साथ यह जानने की भी व्यवस्था हो कि लाभार्थियों को असल में कितना फायदा हो रहा है। तीसरा- जिन परिवारों के बच्चों में कुपोषण की पहचान की जा चुकी है, उन्हें खासकर मनरेगा के तहत रोजगार सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। हमारे स्वास्थ्य केंद्रों और पोषण पुनर्वास केंद्रों में उपयुक्त उपकरण और कार्यकर्ताओं का प्रबंध भी होना चाहिए, खासकर उन क्षेत्रों में, जहां कुपोषित बच्चों की संख्या काफी अधिक पाई गई है। इस पूरी कड़ी में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले चिकित्सक, आशा-आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, नर्स आदि को अनदेखा नहीं किया जा सकता। उन्हें न सिर्फ बेहतर प्रशिक्षण और प्रोत्साहन की जरूरत है, बल्कि इस 'कुपोषण उन्मूलन मिशन' में उन्हें एक अहम भागीदार बनाकर साथ लेकर चलने की जरूरत भी है।

यहां सवाल यह है कि क्या केंद्र सरकार देशवासियों की यह मूलभूत जरूरत पूरी कर पाएगी? या इन मासूमों की पुकार उसके खोखले नारों और वादों में दबकर रह जाएगी? 'स्किल इंडिया', 'डिजिटल इंडिया' और 'मेक इन इंडिया' के जो स्वप्न करोड़ों भारतवासियों को दिखाए गए हैं, क्या वे ऐसी विषम परिस्थितियों में साकार हो सकेंगे? आज भी भारत में हर तीन में से एक बच्चा अपनी असल योग्यताओं को विकसित करने में असमर्थ है , ऐसे में 'स्मार्ट सिटी' की बात करने का भला क्या मतलब, अगर वहां बसर करने वाले भुखमरी की स्थिति में जीवन-यापन कर रहे हों? जब तक भारत का एक भी बच्चा भूखे पेट सोने को मजबूर रहेगा, तब तक 'सबका साथ सबका विकास' का यह नारा केवल रेगिस्तान में मृगतृष्णा बनकर रह जाएगा।

ज्योतिरादित्य सिंधिया, कांग्रेस सांसद (ये लेखक के अपने विचार हैं)

Date: 27-09-16

आसमान छूती कामयाबी

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन यानी इसरो ने एक और उपलब्धि हासिल कर ली है। सोमवार को पीएसएलवी रॉकेट के जरिये दो अलग-अलग कक्षाओं में आठ उपग्रह स्थापित करना कोई आसान काम नहीं है। इसके अलावा यह अंतरिक्ष में उपग्रह स्थापित करने का इसरो का अब तक का सबसे लंबा ऑपरेशन था। इसरो की ऐसी उपलब्धियां हमें प्रसन्नता और एक तरह का गौरव बोध तो देती हैं, लेकिन चौंकाती नहीं हैं।

वह संगठन, जो चांद और मंगल ग्रह पर यान भेजने जैसे बहुत जटिल अभियान को सफलता के साथ अंजाम दे चुका हो, उसके लिए एक ही रॉकेट से दो अलग-अलग कक्षाओं में आठ उपग्रह स्थापित करना एक कठिन काम भले ही हो, लेकिन कोई बहुत दुरूह चुनौती नहीं है। ये चीजें हमें चौंकाती इसलिए भी नहीं हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र की अकेली ऐसी संस्था है, जिसने सफलता हासिल करने को एक आदत बना लिया है। सफलता वहां अब एक नियम है और असफलता कभी-कभार दिखने वाला अपवाद। दुनिया भर में निजी और सरकारी क्षेत्र की जितनी भी अंतरिक्ष एजेंसियां इस समय सक्रिय हैं, उनमें इसरो के नाकाम होने की दर सबसे कम है। और तो और, विज्ञान और तकनीक के बाकी क्षेत्रों में पिछले दिनों भारत के मुकाबले कहीं ज्यादा तरक्की कर चुका चीन भी इस मामले में काफी पीछे है।उसका एक मंगल अभियान असफल रहा है और अब वह दूसरे की तैयारी कर रहा है, जबकि भारत इस क्षेत्र में अपने पहले ही प्रयास में सफल रहा है।

ऐसी ही सफलताओं के कारण इसरो की गिनती इस समय दुनिया की सबसे भरोसेमंद अंतरिक्ष एजेंसियों में होती है। इसी भरोसे का नतीजा है कि दुनिया के विकसित देशों के उपग्रह भी अब लांच होने के लिए भारत आ रहे हैं। सोमवार को ही जो उपग्रह लांच हुए, उनमें अमेरिका और कनाडा जैसे देशों के उपग्रह भी शामिल हैं। इसरो की एक और उपलब्धि यह भी है कि उसने बहुत कम लागत में अंतरिक्ष अभियान को अंजाम देने का अर्थशास्त्र तैयार किया है। इस वजह से भी वह उपग्रह स्थापित करने की अंतरराष्ट्रीय स्पद्र्धा में सबसे आगे है। यह ऐसा बाजार है, जिसकी संभावनाएं लगातार बढ़ रही हैं।यह माना जाता है कि अगले कुछ दशक में अंतरिक्ष पर्यटन एक बहुत बड़े व्यवसाय का रूप ले लेगा। ऐसा कारोबार शुरू होगा, तो उसके बाजार का एक सबसे बड़ा दावेदार इसरो भी होगा। अच्छी बात यह है कि इसरो ने अपनी बहुत सी योजनाएं इसी लक्ष्य की दिशा में बनाई हैं। मसलन, चंद्र पर मानव मिशन भेजने की उसकी योजना इसी मायने में महत्वपूर्ण है। यहां यह याद करना भी जरूरी है कि इसरो का पिछला मानव रहित चंद्रयान अभियान उम्मीद से बहुत ज्यादा सफल रहा था। वह चंद्रयान ही था, जिसने पहली बार चंद्रमा पर पानी की मौजूदगी का पता लगाया था।

इसरो की ये कामयाबियां अंतरिक्ष के अलावा हमारी जमीन के बहुत सारे सच भी बयान करती हैं। लगातार घाटा झेलने वाली सार्वजनिक कंपनियों के निजीकरण करने के लगातार दबावों के बीच भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन एक अपवाद की तरह खड़ा है। अगर हम इसरो की तुलना प्रतिरक्षा अनुसंधान व विकास संगठन से करें, तो हमें हर चीज उल्टी दिखाई देती है। इसरो इस मिथक को तोड़ता है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई का अर्थ सिर्फ धन की बर्बादी करने वाला सफेद हाथी नहीं होता। इसरो यह भी बताता है कि अगर प्रबंधन अच्छा हो, तरीके पेशेवर हों और किसी काम को मिशन की तरह करने व लक्ष्य हासिल करने की भावना हो, तो सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी भी दुनिया की सबसे बड़ी कंपनियों के आगे चुनौती खड़ी कर सकती है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 27-09-16

सार्थक करें पर्यटन का ऋषिसूत्र

चरैवेति-चरैवेति'। चलते रहो-चलते रहो! भारतीय संस्कृति का यह ऋषिसूत्र गति, प्रगति व विकास के माध्यम से हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक, सामूहिक व व्यक्तिगत जीवन की पहचान बनता है। वस्तुत: संस्कृति का संवाहक, संचारक व संप्रेषक है पर्यटन। यह ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा हम औरों की संस्कृति व संस्कारों से परिचित होते हैं। अपनी संस्कृति-संस्कार दूसरों तक पहुंचाते हैं। यदि इस पर गंभीरता से अमल किया जाए तो पर्यटन हमारी संस्कृति व संस्कारों को विकसित करने की पाठशाला बन सकता है, जबकि सिर्फ मौज-मस्ती की मानसिकता से किया गया पर्यटन पर्यावरण को दूषित करने में बड़ी भूमिका निभाता है। इस बात पर गंभीरता से अमल कर कुछ नीति-नियमों को अमली जामा पहनाया जा सके तो पर्यटन की सार्थक परिभाषा गढ़ी जा सकती है। सुप्रसिद्ध लेखक जॉन नैसविट ने अपनी पुस्तक "ग्लोबल पैराडक्स' में उल्लेख किया है कि 21वीं सदी में पर्यटन विश्व का सबसे बड़ा उद्योग होगा। आज नैसविट की बात की सच्चाई सार्वजनिक है। भारत हो या कोई और देश, सब जगह यह सच साकार हो रहा है। हर जगह पर्यटन सुविधाओं की विस्तृत जानकारी प्रिंट, टीवी, इंटरनेट के माध्यम से सहज ही उपलब्ध है। आंकड़ों के गणित से विदेशी पर्यटकों एवं रुपयों का संबंध साफ उजागर होता है लेकिन इससे यह पता नहीं चलता कि इन पर्यटकों में से कितनों को भारत के राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व का पता चला। कितनों ने इसे जानने व सीखने में अभिरुचि दिखाई। प्राचीन इतिहास को पलटें तो तीर्थाटन व देशाटन के नाम से विख्यात रहे इस देश में पर्यटन का लक्ष्य सदा से कला-सौंदर्य के विकास के साथ ज्ञानार्जन व आध्यात्मिक समृद्धि के लिए किया जाता रहा है। अरब व यूनान देशों में दर्शन व गणित का ज्ञान वहां के पर्यटक ही भारतवर्ष से लेकर गए थे। चीनी पर्यटक ह्वेनसांग व फाह्यान के बारे में तो प्राय: सभी जानते होंगे जिन्होंने भारतीय ज्ञान व संस्कृति की अनगिनत बातें यहां से सीखकर अपने देशवासियों को बताई-सिखाई। इसी तरह भारत से विदेश जाने वाले कुमारजीव, कौडिन्य एवं बौद्ध धर्मानुयायियों ने अपने आचरण व ज्ञान से वहां के निवासियों को लाभान्वित किया। अतीत के इस सच का पुनमरूल्यांकन करना व इसका नवीनीकरण करना आज की सबसे बड़ी जरूरत है। आंकड़े कहते हैं बाहर से आने वाले पर्यटक यहां औसतन पर 10 से 29 दिन तक ठहरते हैं। इतने समय में उन्हें देश की राष्ट्रीय विशेषताओं के बारे में बताया-सिखाया जा सकता है। यह दायित्व केवल सरकारी ढांचे से जुड़े लोगों का नहीं है। सारी अला-बला सरकार के माथे मढ़कर स्वयं सभी दायित्वों से मुक्त अनुभव करना, एक तरह से राष्ट्रीय अपराध है; जिसके लिए हम सभी जिम्मेदार हैं। पर्यटन से जुड़े सरकारी ढांचे के साथ संस्कृति व संस्कार का सच बताना-सिखाना हम सभी का दायित्व है। इनमें पर्यटन उद्योग से जुड़े लोग हों, होटल व्यवसायी हों, दुकानदार, परिवहन व्यवस्था से जुड़े लोग हों या फिर कलाकर व शिल्पकार। सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक संस्थाओं को भी इस विधा से जुड़कर अग्रणी भूमिका निभाने की जरूरत है। पर्यटन उद्योग धनार्जन का कारगर माध्यम है परंतु भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्य सबसे बढ़कर हैं, क्योंकि इनके न रहने पर हम आखिर अपनी किन विशेषताओं के आधार पर देशी-विदेशी सैलानियों को अपनी ओर आकर्षित कर पाएंगे? इसके लिए हमें पर्यटन उद्योग को संस्कृति एवं संस्कारों की पाठशाला बनाने पर गहराई से विचार करना होगा। यह कर्तव्य राष्ट्रीय व प्रांतीय सरकारों के साथ प्रत्येक भारतवासी का भी होना चाहिए।

आखिर, जो पर्यटक हमारे देश में, हमारे प्रांत में अपना बहुत सारा धन, समय व श्रम खर्च करके आते हैं, उनके मन में निश्चित ही बहुत कुछ देखने के साथ-साथ बहुत कुछ जानने और सीखने की भी लालसा होती है। उनकी देखने की लालसा तो जैसे-तैसे पूरी हो जाती है परंतु जानने और सीखने की लालसा जस की तस रह जाती है। इसलिए यह सुनिश्चित करना बहु जरूरी है कि हम अन्तरप्रान्तीय और बाहर से आने वाले पर्यटकों को अपने प्रांत-देश की कौन सी अनूठी बात बताएंगे-सिखाएंगे? यदि हम सब मिलकर उनकी यह इच्छा पूरी कर सकें, पर्यटकों से अपनी आर्थिक संपन्नता बढ़ाने के बदले उन्हें मान-संस्कृति व संस्कार से समृद्ध कर सकें तो समझना चाहिए कि यकीनन हम अपना राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कर्तव्य सही रूप में निभा सके हैं।

पूनम नेगी

जनसत्ता

Date: 27-09-16

कामयाबी का सफर

इसरो यानी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन उन गिने-चुने संस्थानों में है जिन पर भारत मजे से गर्व कर सकता है। एक ऐसे दौर में जब हर तरफ कर्तव्य के प्रति लापरवाही, खुदगर्जी और अनुशासन का अवमूल्यन नजर आता है, इसरो लगन, मेधा और मेहनत की मिसाल बना हुआ है। इसलिए यह स्वाभाविक ही इसरो का शानदार इतिहास है और एक से बढ़ कर एक कीर्तिमान इसके नाम जुड़ते जा रहे हैं। इसी सिलसिले की ताजा कड़ी है सोमवार को श्रीहरिकोटा से पीएसएलवी-सी 35 की लांचिंग। यह अंतरिक्ष में भारत की एक और बड़ी छलांग है। इसके जरिए इसरो ने अब तक के अपने सबसे मुश्किल और लंबे मिशन को अंजाम दिया।

यह रॉकेट आठ उपग्रहों को लेकर गया है। पर उससे भी बड़ी बात है उपग्रहों को अलग-अलग कक्षा में स्थापित करना। ऐसा दुनिया में सिर्फ दूसरी बार हुआ है, इसी से इसरो की ताजा उपलब्धि की अहमियत का अंदाजा लगाया जा सकता है। इन उपग्रहों में भारत के सी-35 स्कैटसैट-1 के अलावा पांच अन्य देशों के सात उपग्रह शामिल हैं। इस प्रक्षेपण में इसरो ने पहली बार मल्टीपल बर्न तकनीक का इस्तेमाल किया है। अंतरिक्ष में रॉकेट इंजन को बार-बार बंद और चालू करने की यह खास तकनीक है। महीने भर पहले भी इसरो ने एक बड़ी तकनीकी सफलता हासिल की थी, जब उसने वायुमंडल की आॅक्सीजन के इस्तेमाल से अत्याधुनिक स्क्रैमजेट रॉकेट इंजन का पहला प्रायोगिक मगर सफल परीक्षण किया था। स्क्रैमजैट का प्रक्षेपण केवल वायुमंडलीय चरण के दौरान होता है, रॉकेट के इंजनों में दहन के लिए ईंधन और आॅक्सीकारक दोनों होते हैं। फिर, पीएसएलवी तो इसरो की सफलता की पहचान बन चुका है। पीएसएलवी ने पहली सफल उड़ान 1994 में भरी थी। पहले यह तकनीक सिर्फ रूस के पास थी। इसरो ने चंद्र मिशन और मंगल मिशन भी पीएसएलवी से ही लांच किए थे।

ताजा प्रक्षेपण से एक बार फिर जाहिर हुआ है कि इसरो के प्रति अंतरराष्ट्रीय आकर्षण बढ़ रहा है; विदेशी उपग्रहों को कम लागत में कक्षा में स्थापित करने की अपनी सफलता के कारण इसके मुरीद देशों की तादाद लगातार बढ़ी है। अपेक्षया

किफायती प्रक्षेपण के चलते इसरो की सेवाएं लेने वाले देशों में अब कई बार विकसित देश भी शामिल हो जाते हैं। ताजा प्रक्षेपण इसका गवाह है। किफायती होने से इसरो की कारोबारी धाक जमी है और उसने 2013 से 2015 के बीच तेरह देशों के अट्ठाईस उपग्रह भेज कर कोई दस करोड़ डॉलर की कमाई की। अंतरिक्ष में विदेशी उपग्रह भेजने का इसरो का व्यावसायिक सफर सत्रह साल पहले शुरू हुआ था, जो कि लगातार नए कीर्तिमान बना रहा है। इस साल बाईस जून तक इसरो चौहत्तर विदेशी उपग्रह प्रक्षेपित कर चुका था, सोमवार को यह तादाद बढ़ कर उनासी हो गई। और उम्मीद की जा सकती है कि इसरो जल्दी ही शतक पूरा कर लेगा। भारत के स्कैटसैट-1 से समुद्र और मौसम के अध्ययन में बड़ी मदद मिलेगी। मौसम का पूर्वानुमान अब पहले से कहीं अधिक सटीक मिल पाएगा। समुद्री तूफान के बारे में अब पहले से कहीं जल्दी पता लगाया जा सकेगा। जाहिर है, स्कैटसैट-1 कृषि और आपदा प्रबंधन में विशेष मददगार साबित होगा। लेकिन इसरो की तमाम महिमा के बरक्स देश में विज्ञान की शिक्षा की हालत कैसी है, यह सवाल भी हमें पूछना चाहिए। इसरो देश में वैज्ञानिक प्रतिभा का एक द्वीप बन कर न रह जाए!